Research Review
The Refereed & Peer Review International Journal
www.researchreviewonline.com

ISSN : 2321- 4708
Apr 2019, Year - 5 (72)
Paper ID : RRJ000042

साहित्य और सामाजिक जीवनका संबंध

संशोधक

डॉ. अश्विन के. कुहादिया

साहित्य और सामाजिक जीवन का क्या संबंध है, यह प्रश्न आज एक विशेष प्रयोजन से पूछा जाता है। वर्तमान भारतीय समाज एक ऐसी अवस्था पर पहुंच गया है जिसके आगे अज्ञात संभावनाएं छिपी हुई हैं। विशेषतः हमारे शिक्षित नवयुवकों के लिए यह क्रांति की घडी हैं। सब ओर से हमारी दृष्टि खिंचकर इसी प्रश्न की ओर आ लगी है। साम्राज्यशाही का बोझ असह्य हो गया है और आर्थिक वैषम्य का नग्न नृत्य देखा नहीं जाता। इसी आवेग में हमि बार-बार पूछते हैं, साहित्य और समाज का क्या संबंध है?

सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री मार्क्स ने हमारी स्थिति और भी स्पष्ट कर दी है। उसने हमारे लेए सोचने को कुछ रक्खा ही नहीं। सक्र्स ने अर्थ-योजना को लेकर जो सिद्धांत उद्घाटित किया, उसका अलग-अलग क्षेत्रो में अनेकमुखी प्रसार हुआ। साहित्य-क्षेत्र भी आज मार्क्स विचारों से पूर्णतः प्रभावित हैं। ऐसी अवस्था में साहित्य के सामाजिक आधार का प्रश्न पुनः-पुनः उठकर शंका उत्पन्न करता है कि हम साहित्य को किसी मतवाद के घेरे में तो नहीं डाल रहे।

हम यह मानते हैं कि भारतवर्ष में आज का मुख्य प्रश्न राजनैतिक और आर्थिक हैं। हम यह भी मानते हैं कि मार्क्स के सिद्धांत बडी हद तक वैज्ञानिक हैं और भारतीय स्थिति पर भी लागू होते हैं। हम यहां तक मानने को तैयार हैं कि आज के साहित्यीक का प्रधान कर्त्तव्य मार्क्स के सुझाए हुए वर्ग-संघर्ष में अपने पक्ष का ज्ञान और नर्णय कर लेना है। किंतु यह सब होते हुए भी हम नहीं मान सकते कि साहित्य की अपनी स्वतंत्र सत्ता नहीं है, वह किसी सामाजिक मत-विशेष का अनुचरमात्र है।

यदि मार्क्स का सिद्धांत अपनी पूरी कडाई के साथ साहित्य-क्षेत्र में स्वीकार कर लिया जाए, तो हमें मान लेना होगा कि हमारे पुराने सहित्य की अब कोई उपयोगिता नहीं रह गई। किंतु यह बात न केवल असंगत हैं, बिलकुल असत्य भी हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि साहित्य परिवर्तनशील वस्तु-व्यापार में केंद्रित विचारधारा मात्र नहीं है, वह जीवन के मार्मिक और स्थायी स्वरूपों का जीता-जागता चित्र हैं। साहित्य सामाजिक इतिहास का अंग नहीं है, वह उसका गतिमान स्मारक हैं। समाज और इतिहास के बदल जाने पर भी स्मारक नहीं बदला करता। फिर साहित्य समाज की श्रेष्ठतम संस्कृति का द्योतक हैं----मानवता की स्थायी निधि है। इन सबके अतिरिक्त वह एक स्वतंत्र कलावस्तु है। वाणी और मानव-भावाना का साकार वैभव हैं।

यह ठीक है कि कवि भी एक सामाजिक प्राणी है, इतिहास की इकाई है। वह भी समय और उसकी सामूहिक प्रेरणा द्वारा संचालित होता है। कवि के व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के संस्कार उसके काव्य

Publishing URL: http://www.researchreviewonline.com/issues/volume-5-issue-72-apr-2019/RRJ000042

Scanned by CamScanner

ISSN : 2321- 4708
Apr 2019, Year - 5 (72)
Paper ID : RRJ000042

पर भी पडते है, किंतु कविता उन संस्कारों का संग्रहमात्र नहीं है। कविता समय और समाज के घेरे में बंधे हुए कवि की स्वतंत्र जीवन-कल्पना है। वह उसकी असाधारण अनुभूति है। साधारण जीवन-वस्तु से उसकी तुलना नहीं की जा सकती। कवि जितना ही महान होगा, उसकी कल्पना समय के स्थूल प्रभावों से उतनी ही निरपेक्ष होगी।

किसी भी युग के, किसि भी शैली के, संसार के किसी भी देश के किसी श्रेष्ठ कवि को उदाहरणस्वरूप ले लीजिए, उपर्युक्त तथ्य का प्रमाण मिल जाएगा। किंतु आज हमारे देखने में ऐसे समीक्षक और लेखक आ रहे हैं जो मार्क्सवाद की स्थूल दृष्टि से काव्य की समीक्षा करते है और काव्य कि रचना भी। मार्क्सवाद हो या कोई वाद हो, वह काव्य की कसौटी नहीं बन सकता। वह काव्य की प्रेरक शक्तियों कों, समय को और सामाजिक कर्त्तव्य को समझने में सहायक हो सकता है, किंतु काव्य का नियामक नहीं बन सकता।

काव्य के अपने क्षेत्र पर समय-समय पर अनेक वादों के हमले हुए हैं। कभी धर्म ने उस पर आक्रमण किया, कभी दर्शन ने और कभी अध्यात्म ने। कभी किसी विज्ञान ने उस परअधिकार प्राप्त करना चाहा, कभी किसी वाद की भरमार रही, कभी किसी की। सबने अपनी अपनी ओर खींचकर काव्य के अपने स्वरूप को विकृत करना चाहा। उसके स्वच्छ स्वरूप पर कई प्रकार के धब्बे डाल दिए। आज मार्क्सवाद भी कुछ इसी प्रकार का उपक्रम कर रहा है। यह कोई नई बात नहीं हैं।

काव्य की अपनी सत्ता पर चोट करने वाले इन सभी वस्तु-व्यापारों से हमें सावधान रहना होगा। किंतु इसका यह मतलब नहीं कि हम धर्म, दर्शन, अध्यात्म, विज्ञान अथवा किसी भी मानव-विद्या का तिरस्कार करते हैं और काव्य में उसका प्रवेश-निषेध चाहते हैं। इन्हीं विद्याओं के आधार पर तो जीवनतत्व का नर्माण होता है। इनकी उपेक्षा कवि कर ही कैसे सकता है! यदि वह इनकी उपेक्षा करेगा तो उसकी कविता में रह ही क्या जाएगा---जीवन-निरपेक्ष रस, कोरा अलंकार और शब्दाडंबर! कविता के लिए कविता और कला के लिए कला। इससे बढकर भ्रामक वस्तु और क्या होगी!

तत्पर्य यह कि हम साहित्य से समाज का, सामाजिक का, सामाजिक जीवन का, सामाजिक विचारधाराओं का---वादों का, संबंध मानते हैं, किंतु अनुवर्ती रूप में। साहित्य की अपनी सत्ता के अंतर्गत उसके निर्माण में इनका स्थान है। ये उसके उपादान और हेतु हुआ करते हैं, नियामक और अधिकारी नहीं। साहित्य की अपनी स्वतंत्र सत्ता हैं, यद्यपि वह सत्ता जीवन-सापेक्ष है। जीवन-निरपेक्ष कला के लिए कला भ्रांति है, जीवन-सापेक्ष कला के लिए कला सिद्धांत है। संक्षेप में यही हमारी स्थिति है।

काव्य या साहित्य के अनेक विभाग हैं। गद्य और पद्य, दृश्य और श्राव्य। उसके अनेक उपविभाग हैं---उपन्यास और आख्यायिका, निबंध और प्रबंध, महाकाव्य-खंडकाव्य, आख्यानक और मुक्तक, नाटक और उसके अनेक भेद। इन सबका अलग-अलग इतिहास है। देश-भेद से इनकी अलग-अलग प्रकृति है। समाज-भेद से इनका नया-नया विकास है। किन्हीं दो व्यक्तियों की रचना एक-सी नहीं होती। इन असंख्य

Scanned by CamScanner

Research Review
The Refereed & Peer Review International Journal
www.researchreviewonline.com
ISSN : 2321- 4708
Apr 2019, Year - 5 (72)
Paper ID : RRJ000042

भेदों के रहते हुए भी कविता कविता है, साहित्य साहित्य है। वाह्य बहुरूपता में एक अंतरव्यापिनी एकता है। इसी एकता की खोज साहित्य-तत्व की खोज हैं।

कविता क्या हैं----यह प्रश्न अब यहां उपस्थित हैं। काव्य तो प्रकृत मानव-अनुभूतियों का, नैसर्गिक कल्पना के सहार, ऐसा सौंदर्यमय चित्रण है जो मनुष्यमात्र में स्वभावतः अनुरूप भावोच्छ्वास और सौंदर्य-संवेदन उत्पन्न करता है। इसी सौंदर्य-संवेदन को भारतीय पारिभाषिक शब्दवली में 'रस' कहते है, यद्यपि यह स्वीकार करना होगा कि 'रस' का हमारे यहां दुरुपयोग भी कम नहीं किया गया। ऊपर की व्याख्या से हम काव्य या साहित्य-मात्र के संबंध में कतिपय निष्कर्षों पर पहुंच सकते हैं। प्रकृत मानव-अनुभूति एक सार्वजनिक वस्तु हैं, इसमें वे कृत्रिम अनुभूतियां सम्मिलित नहीं हैं, जिनकी शिक्षा कुछ विशेष व्यक्तियों या वर्गों द्वारा दी जाती है, जिससे सांप्रदायिक काव्य का निर्णय होता है। इन अनुभूतियों का चित्रण जिस नैसर्गिक कल्पना के सहारे होता हैं, उसकी उद्भाविका कवि की प्रतिभा होती है। यह कल्पना जितनी ही नैसर्गिक और प्रशस्त होगी, उतने ही उन्नत काव्य का सृजन करेगी, उतनी ही चित्रण की सौंदर्यमयता बढ जाएगी और उतना ही समुन्नत और प्रगाढ उसका संवेदन होगा। सार्वजनीन होने के कारण ही यह सौंदर्य-तत्व नित्य और शाश्वत हैं। एक ही कविता सैंकडों-हजारों वर्ष के बाद भी वही सौंदर्य-चेतना उत्पन्न करती है, जो उसके आरंभ में उत्पन्न की थी।

अवश्य कविता सार्वजनीन और शाश्वत वस्तु हैं, किंतु कवि के व्यक्तिगत विकास और संस्कार के अनुसार उसकी सौंदर्यानुभूति की शक्ति, मात्रा और कीमतीपन में अंतर हुआ करता हैं, और उन अनुभूतियों को व्यक्त करने की सामर्थ्य या योग्यता ी कम या अधिक करती है। इन सारी वस्तुओं का परिचय हमें कवि की उस रचना से ही प्राप्त होता है, इसलिए काव्य-विवेचन में रचना या अभिव्यक्ति ही सब कुछ है। वास्तव में काव्य के उत्कर्ष या अपकर्ष की परीक्षा इन्हीं विशेषताओं के आधार पर की जा सकती हैं। यों, व्यावहारिक विभाग के लिए हम महाकाव्य, गीताकाव्य, उपन्यास, आख्यायिका और नाटक आदि के विभाग करते हैं। उनके विभिन्न तत्त्वों का, इतिहास और सामाजिक विकासक्रम में उनके परिवर्तित स्वरूपों का, अध्ययन करते हैं। किंतु काव्य--साहित्य का तात्विक मूल्य तो प्रथम वर्गिकरण में ही है।

अब यह पूछा जा सकता है कि कविता यदि शाश्वत वस्तु है तो उस पर देश-काल आदि की बदलती हुई स्थितियों और विचारधाराओं का क्या कुछ भी प्रभाव नहीं पडता? यह पहेली ऊपर से जितनी संदिग्ध जान पडती है, वास्तव में उतनी है नहीं। देश, काल और वातावरण का प्रभाव प्रत्येक व्यक्ति और समाज पर पडता है। कवि की दृष्टि तो और भी तीव्र और ग्राहिका शक्ति सजग रहती है। इसलिए सच्चे कवि और साहित्यकार प्रायः प्रगतिशील ही हुआ करते हैं। किंतु कवि का कार्य प्रगतिशील होना ही नहीं हैं। प्रगतिशील सामाजिक प्रेरणाओं, स्वरूपों और प्रवृत्तियों को शाश्वत सौंदर्य-संवेदन का स्वरूप देना उसका कार्य है। आज का प्रगतिशील व्यक्ति कल पिछड शकता है, किंतु हृदय के चिरंतन सौंदर्यतारों को स्पर्श करने वाला कवि कभी पिछडता नहीं। कालिदास और शेक्सपियर, होमर और मिल्टन, वाल्मीकि और

Publishing URL: http://www.researchreviewonline.com/issues/volume-5-issue-72-apr-2019/RRJ000042

Scanned by CamScanner

ISSN : 2321- 4708
Apr 2019, Year - 5 (72)
Paper ID : RRJ000042

व्यास, सूर, तुलसी और कबीर शताब्दियों पुराने हैं, किंतु उनका काव्य उतना ही मनोरम आज है जितना वह अपने निर्माण के दिन रहा होगा।

संदर्भ ग्रंथ

(१) हिन्दी निबन्ध--डो.गोविन्दलाल छावडा।
(२) हिन्दी साहित्य रचना और विचार--नन्ददुलारे बाजपेयी।
(३) हिन्दी साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि---डो.विनयकुमार पाठक।
(४) हिन्दी भाषा एवं व्याकरण---डो.मायाप्रकाश पांडेय।

Scanned by CamScanner